International Journal of Applied Research 2018; 4(7): 417-420

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2018; 4(7): 417-420
www.allresearchjournal.com
Received: 17-05-2018
Accepted: 19-06-2018

प्रशांत कुमार
बिजुली, सदर, दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
प्रशांत कुमार
बिजुली, सदर, दरभंगा, बिहार, भारत

कालिदास के काव्यों में प्रेम का स्वरूप

प्रशांत कुमार

सारांश
कला में सौन्दर्याधान करने के लिए सफल चित्रकार की तरह कवि प्रकृति को पृष्ठ–भूमि बनाता है, इसी लिए कालिदास भी प्रकृति के पक्के पुजारी बनकर अन्तर्जगत् के सौन्दर्य को बहिर्जगत् में भी देखते हुए दोनों में समन्वय नहीं, प्रत्युत् तादात्म्य भी स्थापित करना चाहते हैं। इनकी प्रकृति जड़प्रकृति नहीं। इनकी दृष्टि में प्रकृति का प्रत्येक अंश–चाहे वे छोटे–उड़े पहार हो या पुष्प–पत्र, सभी छोटा पुष्प–अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व रखे हुए हैं। चेतना की तरह ही उनमें भी सुख–दुख का संवेदन और आशा–निराशा एवं भय–हर्ष की अनुभूति है।

प्रस्तावना
ऋतुसंहार में मानव–हृदय के प्रणय के थपेड़े सारी प्रकृति में प्रतिफलित हुए मिलते हैं, तो दूसरी ओर शकुन्तला के पति–गृह जाने के अवसर पर कोई वृक्ष 'क्षौम' देने लगता है, तो कोई 'लाक्षारस' और उसके चले जाने पर गृह–ललनाओं की भांति लताएं भी 'पाण्डुपत्रों से आंसु गिराने लग जाती हैं तथा मृगियां भी 'दर्भ–कंवल 'उगल' देती हैं जैसे कि शकुन्तला–वृक्षलतादि सबके सब परस्पर सहानुभूति प्रदर्शित करते हुए एक ही विशाल परिवार के सदस्य हों। कवि को विश्व की अनेकता में यह एकता का दिव्य दर्शन भारतीय ऐकात्म्यवाद की पृष्ठ–भूमि पर हुआ प्रतीत होता है। [1]
मानव–हृदय के भावों को व्यक्त करने का प्रकार भी कालिदास का अनोखा ही है। ये शब्दों की व्यज्जना–शक्ति पर अधिक बल देते हैं, अभिधा शक्ति पर कम। इस कारण इनके भाव सदा व्यंग्य ही रहते हैं, वाच्य नहीं होते और भावों की यह व्यंग्यता ही काव्य–जगत् की सर्वश्रेष्ठ विभूति है, जो इनकी सभी कृतियों में ओत–प्रोत हुई मिलती है। एक छोटे से उदाहरण के रूप में–'कुमारसम्भव में महादेव के साथ अपने विवाह की बात सुनकर पिता के आगे पार्वती लजा गई, किन्तु कवि 'लजा गई' क्यों कहता, उसे तो 'मुख नीचे किय हुए अपने हाथ से कमल की पंखुडियों को गिनने लगी' कहकर व्यज्जना द्वारा ही लज्जा का मार्मिक चित्र खींचना था। भावों की व्यंगता के साथ–साथ कवि उनको अपने ठोस और अखण्ड रूप में ही रखना पसन्द करता है, उनकी 'चीरफाड़' नहीं करता। दुष्यन्त प्रेम से आहत–हृदय होने के अनन्तर जब फिर शकुन्तला को देखते हैं, तो उस समय उन्हें अपार आनन्द होता है। कालिदास ने –'अये लब्धं नेत्रनिर्वाणम्' कह कर अकेले 'निर्वाणम् पद से ही उनके अनिर्वचनीय आनन्द का बोध करा दिया है। इसके विपरीत भवभूति को देखिये कि वह वैसे ही आनन्द का कैसा विश्लेषण करता है जब कि सीता का दोबारा घर से निकाल देने के अनन्तर एक दिन वन में राम की उससे भेंट होती है तो उसके कर–स्पर्श का उनको ऐसा आनंद होता है कि 'जो सम्भवतः [2] कल्पवृक्ष किसलयों से निचोड़ा हुआ रस हो अथवा चन्द्रमा के किरण समूह को दबाकर निकाला गया द्रव्य हो, अथवा विरह की आग से जले हुए प्राणों को शीतल बनाने के लिए हृदय पर सज्जनीवनी औषधि का लेप हो।' स्पष्ट है कि भाव–व्यज्जन में कालिदास ने तो अधिकांशतः संश्लेषणात्मक शैली ही अपनाई है, विश्लेषणात्मक नहीं।
हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठित कविवर मैथिलीशरण गुप्त ने इस महाकवि की निम्नलिखित शब्दों में वन्दना की है–

''चिरकाल रसाल ही रहा जिस भावज्ञ कवीन्द्र का कहा–
जय हो उस कालिदास की कविता–केलि कला–विलास की। [3]

कालिदास शृंगार–रस के कवि थे। इन्होंने मानव–हृदय की प्रेमवृत्ति को लेकर ही अपनी अधिकतर कृतियों में उसकी व्याख्या की है। साहित्यज्ञों के इस कथन पर कि शृंगार सब रसों का राजा है, बहुत कुछ सत्यता है, क्योंकि प्रेम मानव–हृदय के भाव–जगत् में महत्त्व–पूर्ण स्थान रखता है; वह उसका अधिपति है;

इसीलिए कालिदास के अन्तर्वती 'कलाकार' ने जगत् को 'प्रेमदृष्टि' से देखा और उसकी सारी रचनायें प्रेम–प्रधान हो गई। कवि के ऋतुसंहार से लेकर शाकुन्तल तक सारे ग्रन्थ प्रेम के क्रमिक विकास की एक विस्तृत कहानी है। ऋतुसंहार में प्राकृतिक सौंदर्य से अनुगत युवा–युवतियां की प्रेम–सरिता तरंगे मार रही है और यही बात मालविकाग्निमित्र में मालविका और अग्निमित्र के कथानक में भी मिलती है, किन्तु इन दोनों रचनाओं में यह प्रेम केवल शारीरिक सौंदर्य एवं उसके आकर्षणों पर अवलम्बित तथा ऐन्द्रिक परितृप्ति में परिनिष्ठित हुआ अपने भौतिक पहलू को, अपने प्रारम्भिक वासना–रूप को ही व्यक्त करता है; उससे आगे नहीं जाता। वास्तव में कवि ने इन दोनों ग्रन्थों में प्रेम की पृष्ठभूमि बतलाकर प्रेम का उपक्रम मात्र किया है। कुमारसम्भव और विक्रमोर्वशीय हमें प्रेम–विकास की दिशा में दूसरे सोपान पर चढ़ाते हैं। उनमें कवि ने प्रेम में पर्याप्त सुधर किया है। भौतिकता के दलदल में से उठाकर उसे आध्यात्मिकता के क्षेत्र पर प्रतिष्ठापित किया–एक ओर तो वासना की सूखी उर्वशी को प्रायश्चित–स्वरूप लता में परिवर्तित करके और दूसरी ओर निज सौंदर्य पर गर्वोन्मत पार्वती को तपोवन में उतार करके। मेघदूत सारा एक विरहानल–कुण्ड ही है, जिसमें कवि द्वारा यक्ष का प्रेम वासना–मल दूर करने के लिए खूब फूका जा रहा है। अपनी अन्तिम और सर्वश्रेष्ठ कृति शाकुन्तल में कालिदास ने भौतिक रूप से प्रारम्भ हुए प्रेम में वासना–कर्दम को क्रमशः धोते अपने आध्यात्मिक रूप में परिनिष्ठित करवाकर उसे दिव्य और अमर बना दिया और यही भारतीय संस्कृति का आदर्श–प्रेम है। कतिपय पाश्चात्य और भारतीय विद्वान् कवि की रचनाओं में कामुकता का आरोप लगाकर उनसे नाक–भी सिकोड़ते हैं, किन्तु वे भ्रम में हैं। कालिदास कर्त्तव्य–पथ से गिरा देने वाले उच्छृङ्गल, भोग–परक प्रेम के कभी पक्षपाती नहीं है। ऐसे प्रेम को तो इन्होंने मेघदूत में स्वामी के शाप से, कुमारसम्भव, में महादेव के शेष से और शाकुन्तल में दुर्वासा ऋषि के शाप से फूक ही डाला। एमर्सन के शब्दों में–कवि उद्धार कर देने वाले देव होते है। वे हमारी भावनाओं में प्रवेश करके उन्हें परिष्कृत करते हुए समाज में उठाते हैं, गिराते नहीं। इसलिए कालिदास की रचनाओं में जहां कला के 'सत्यम् और 'सुन्दरम्' अंश हैं, वहां उनके साथ–साथ–शिवम्' अंश भी पूरा–पूरा है। [4]

रसात्मक वाक्य को काव्य कहते हैं। वह दो प्रकार का होता है। दृश्य और श्रव्य। दृश्य काव्य वह है, जो अभिनीत होकर देखा जा सके। इसके भीतर शाकुन्तल आदि नाटक आते है। श्रव्य काव्य पढ़ा और सुना ही जा सकता है। इसके तीन भेद होते है। पद्य, गद्य और चम्पू (गद्य–पद्य–मिश्रित)। पद्य काव्य भी तीन प्रकार के हैं– महाकाव्य, खण्ड–काव्य और मुक्त–काव्य।

यह एक विस्तृत प्रबंध–काव्य होता है, इसमें किसी प्रख्यात राजा या एक ही वंश के अनेक राजाओं का पूरा–पूरा जीवन–वृत्तान्त होता है। नगरों, ऋतुओं, सूर्य–चन्द्रोदयों, वन–विहार, जल–कीड़ा, यज्ञ, यात्रा आदि के वर्णन करने का भी नियम है। शृंगार, वीर अथवा शान्त–इनमें से कोई एक रस प्रधान रहता है और दूसरे उसके अङ्ग। सारा कथानक सर्गो में विभक्त रहता है। कुमारसम्भव और रघुवंश कालिदास के महाकाव्य है।

मुक्तक का न्यु आकार में महाकाव्य से बहुत छोटा होता है। इसको गीतिकाव्य भी कहते हैं। यह महाकाव्य का एक खण्ड ही होता है, क्योंकि इसमें समूचा जीवन–वृत्तान्त नहीं होता है, प्रत्युत जीवन के किसी एक ही पहलू या एक ही वृत्ति–जैसे प्रेम, धर्म या नीति की व्याख्या होती है। जो भेद एक उद्यान और उनमें होने वाले एक पौधे में है, वही भेद महाकाव्य और खण्डकाव्य में है। [5]

मेघदूत संस्कृत–साहित्य के गीति–काव्यों में सर्व प्रथम गिना जाता है। कालिदास की परिपक्व कला, कल्पना की ऊंची उड़ान, परिष्कृत माधुरी भरी भाषा विषय की धारावाहिक गति, एवं गीति की एकतानता का यह एक ऐसा अद्धवत नमूना है जिसकी टक्कर का विश्वभर में दूसरा कोई हो ही नहीं सकता। मेघदूत 'मन्दाक्रान्ता' छन्द में लिखा हुआ 121 पद्यों का छोटा सा काव्य है। इसमें कुबेर के शाप से प्रिया–वियुक्त हुए यक्ष के व्यथित हृदय की वेदना–भरी कहानी है, हृदय को द्रवित कर देने वाली 'विप्रलम्भ' की एक करूण–गीतिका है। यह दो भागों में विभक्त है– पूर्वमेघ और उत्तरमेघ।

प्रिया के प्रति अन्ध–प्रेम होने के कारण अपने कर्त्तव्य से प्रमाद करने वाला एक यक्ष यक्षेश्वर कुबेर द्वारा शाप के रूप में वर्ष भर के लिये अलकापुरी से निकाला जाता है। बेचारे ने रामगिरि पर डेरा डाला और वहीं आश्रमों में रहने लगा। एक दिन उसे आषाढ़ मास के आरम्भ में पहाड़ की चोटी पर उमड़ा हुआ बादल दिखाई दिया; तत्काल उसका हृदय भर आता है। मेघ के दिखाई देने पर सुखी मनुष्य की भी चित्त डगमगा जाता है, फिर उसका तो कहना ही क्या, जो प्रिया को गले लगाना चाहता है, किन्तु दूर पड़ा हुआ है। यक्ष ने फिर मिलने की आशा में वियोग के दिनों को गिनती हुई अपनी प्रिया को मेघ द्वारा कुशल समाचार पहुंचाना चाहा, अतएव पुष्पादिक से मेघ का स्वागत करके प्रार्थना करता है– हे भाई! सन्तप्तों के तुम ही एक–मात्र सहाराह हो; तुम्हें उत्तरदिशा की ओर जाना है; वहां अलकापुरी में जाकर एक छोटा–सा सन्देश मेरी प्रिया को पहुंचा देना। देखो, कैसी मन्द–मन्द पवन चल रही है; चातक पक्षी तुम्हारी बाई ओर होकर बोल रहा है, बगुलों की पंक्यिां आकाश में उड़ रही हैं और साथ ही बाम्बी से यह इन्द्रधनुष भी प्रकट हो गया है। ये सब तुम्हारी यात्रा के लिए शुभ शकुन हैं, किन्तु मैं, सन्देश कहूं और तुम प्रस्थान करो–इससे पूर्व मैं मार्ग बता देना चाहता हूं। ग्रामीण युवतियों की भोली–भाली आनन्द–भरी आंखों से पिये जाते हुए तुम माल को पार करके आम्रकूट पहुंचना। वहां से कुछ परे तुम्हें विन्ध्याचल की उन्नतावनत तलहटी में विभिन्न धारायें बनाकर बहती हुई रेवा नदी मिलेगी। वहां से तुम दशार्ण देश को जाना, जहां जामुन के वन पके हुए फलों से काले बने होंगे। उसकी राजधानी विदिशा में प्रवेश करके तुम प्रिय के भ्रूभङ्ग–युक्त मुख की तरह चञ्चल तरंगोवाली वेतवती का जल पीना और नीचे नामवाले पर्वत पर विश्राम लेना। वहां से चलकर यद्यपि तुम्हारे लिए मार्ग कुछ टेढ़ा पड़ेगा, तो भी उज्जयिनी जाये बिना न रहना, क्योंकि वह ऐसी सुन्दर नगरी है मानों स्वर्ग की ही एक टुकड़ी भू पर लायी हुई हो। यदि वहां अटारियों में रहनेवाली ललनाओं की बिजली की चमक से भीत एवं चञ्चल चितवनों का स्वाद नहीं लोगो, तो तुम्हारी आंखें एक महान् से वंचित ही रहंगी। अतः निर्विन्ध्या नदी को पार करके तुम अवन्ति देश में प्रविष्ट होना और फिर तुम उज्जयिनी पहुंच जाओगे। वहां बाजार में विक्रयार्थ सजा कर रखे हुए हीरे, पन्ने, मोती आदि के ढेर के देखकर तुम्हें ऐसा प्रतीत होगा मानो समुद्र में अब पानी के अतिरिक्त और कुछ रहा ही नहीं। पास ही में महाकाल शिव का मन्दिर है। वहां तुम शिवजी की सांयकालीन पूजा के समय जाना जिससे कि गर्ज कर तुम नगाड़े का काम दे सको। वह रात उज्जयिनी में बिता कर प्रातः फिर चल पड़ना और गम्भीरा नदी को पार करके देवगिरि को जाना। वहां स्कन्द रहते हैं। पुष्प–मेघ बनकर उनपर फुलों की वर्षा करना। तदनन्तर तुम चर्मण्वती नदी प्राप्त करोगे। उससे परे दशापुर आयेगा, जहां कि स्त्रियां अपने सौन्दर्य के लिये प्रख्यात हैं। वहां से तुम करूक्षेत्र पहुंचागे, जहां अर्जुन ने क्षत्रियों के ऊपर इस तरह बाण बरसाये थे जिस तरह तुम कमलों पर बौछार करते हो। वहां सरस्वती का जल पीना और आगे कनखल चले जाना, जहां परम–पावनी गङ्ग मैदान में बहने के लिये हिमालय से उतरती है। उसका भी जल पीकर जब तुम आगे बढ़ोगे, तो तुम हिमालय पहुंच जाओगे। यहां देवदारू वृक्षों के घने वन मिलेंगे। कहीं कस्तूरी मृगों की सगन्ध आती रहेगी और कहीं शरभ तुम्हारी गर्जना सुनकर तुम से टक्कर लेने के लिए आकाश में उछलेंगे। वहां तुम्हें मीठे स्वर से गाती हुई किन्नरियां भी दिखाई देगीं। वायु से भरे हुए बांस अपनी बांसुरी

बजा रहे होंगे, जो तुम भी गरज कर मृदंग का काम करना। इस तरह हिमालय की सब विशेषाताओं को देखते–देखते चलो; तब विश्राम लेने के लिए उसकी किसी चोटी पर बैठ जाना। फिर वहां से उत्तर की ओर चलकर क्राज्ज–रन्ध्र से तुम कैलास पहुंच जाओगें, जहां शिवजी रहते हैं। उस पर्वत की गोद में बसी हुई अलकापुरी को तुम उसके ऊंचे–ऊंचे प्रासदों से तत्काल पहचान लोगो। [6]

हे मेघ, अलकापुरी के प्रासादों का क्या वर्णन करूं। उन्हें तुम अपनी तरह ही आकाश से बातें करते पाओगे। उनके फर्श मणियों के हैं और दीवारों विविध प्रकार के चित्रों से सज्जित एवं रत्नों से जटित हैं। वहां ऐसी–ऐसी सुन्दरियां हैं, जो तुमने कभी देखी न होंगी। वृक्ष बारह मास फलते रहते हैं। प्रत्येक सांझ नित्यप्रति चांदनी से उज्जवल हुई रहती है। वहां आंसू गिरते हैं, तो आनन्द में ही; ताप होता है, तो काम का ही और कलह होता है, तो प्रेम का ही। यौवन ही एकमात्र अवस्था है; बुढ़ापा नहीं गृहों में सब प्रकार की विभूतियां और सुख–सामग्री नित्य उपस्थित रहती है। वसन–भूषण आदि जिस वस्तु की आवश्यकता पड़ती है, कल्पवृक्ष तत्काल पूरी कर देता है। अभिप्राय यह कि वहां सर्वत्र प्रेम और आनन्द का साम्राज्य है। इसी नगरी में कुबेर के भवन की ओर मेरा गृह है, जिसका विविध–रत्न–जटिल बहिद्वार तुम्हें दूर से ही इन्द्रधनुष–सा चकता हुआ दृष्टिगोचर होगा। उसके भीतर एक मन्दार वृक्ष है, जिसे मेरी प्रिया ने पाल रखा है। पास ही एक बावड़ी, जिसकी सीढ़ियां करकत–मणियों से निर्मित हैं और जिसके एक किनारे पर तुम्हारे जैसा ही एक क्रीडा–पर्वत है। उद्यान में एक रक्ताशोक और बकुल वृक्ष है। इन सब चिहों तथा द्वारा पर चित्रित 'शंख' और 'पद्म; से मेरी अनुपस्थिति के कारण सूने–से पड़े हुए मेरे घर को तुम तत्काल पहिचान लोगे। भीतर तुम्हें युवतियों में ब्रहा की आदि सृष्टि–सी एक सुन्दरी दिखलाई देगी, जो शरीर से दुबली, कमर से पतली और स्तनों से झुकी हुई होगी और जिसकी आंखें तो डरी हुई हिरनियों की तरह चञ्चल होंगी, किन्तु चाल नितम्ब–भार के कारण अलसाई–सी होगी, उसे मेरी पत्नी समझना। वह चक्रवाकी की तरह अकेली है, क्योंकि उसका सहचर मैं दूर पड़ा हुआ हूं। मेरे वियोग के दुःख में बेचारी तुषार–पात से मारी हुई पद्यिनी की तरह क्षीण कुछ हो गई होगी। उसे तुम कभी तो मेरा चित्र बनाने का विफल प्रयत्न करती हुई पाओगे कभी गोद में वीणा रखकर मेरे नाम की गीतिका द्वारा व्यर्थ मनोविनोद में लगी हुई देखोगे। कभी वह मैना से बात करती होगी। ''ओ मीठा बोलनेवाली, क्या मुझे भी कभी अपने स्वामी याद आती है? उनके लिये तू बड़ी प्यारी थी।'' कभ्झी वह वियोग के शेष महीनों को दहलीज पर रखे हुए पुष्पों से गिनती होगी। तुम पहले तो – मैं तुम्हारे पति का मित्र हूं – इस प्रकार अपना परिचय देना और तदनन्तर मेरा यह संदेश कहना। [7]

प्रिय, मैं प्रियंगु लताओं में तुम्हारे शरीर की, भय–भीत हुई मृगियों की दृष्टि में तुम्हारे चितवन की, चन्द्रमा में तुम्हारे मुख–सौन्दर्य की, मयूरों के पुच्छों में तुम्हारे केशपाश की ओर नदियों की तंरगों में तुम्हारे भ्रू–विलास की कल्पना करता रहता हूं। किन्तु बड़ा दुख है कि उनमें से किसी में भी तुम्हारे अंगों की समता नहीं मिलती। देखो हृदय में कितनी ही आशायें रखे हुए मैं भी तो अकेला इन वियोग की घड़ियों को किसी तरह काट ही रहा हूं। ओ सजनि, तुम निराश न होना। भला सोचो तो सही कि निरन्तर सुख ही सुख या दुख ही दुख क्या कभी किसी को मिला है? भाग्य का चक्र कभी तो ऊपर चला जाता है और कभी नीचे आ जाता है। अब मेरे शाप के समाप्त होने के लिए केवल चार महीने शेष हैं; इन्हें आंख मीचकर सह लो और फिर हम दोनों शरद् की चांदनी रातों में वियोग के कारण बढ़ी हुई उन–उन इच्छाओं को अच्छी तरह पूरी कर लेंगे।''

यह सन्देश देकर अन्त में यक्ष मेघ से बोला–''भैया, यह मेरा कार्य–चाहे मित्रता के नाते बोलो चाहे दुखी के प्रति दया के नाते बोले–किसी तरह जहां तुम्हारी इच्छा हो चले जाना। ईश्वर करे तुम्हारा मेरी तरह बिजली से कभी वियोग न हो–यही मेरी तुम्हारे लिए कामना है। अच्छा, जाओ, नमस्कार।''

कुमारसम्भव और रघुवंश की तरह मेघदूत किसी पौराणिक अथवा ऐतिहासिक आधार पर टिका हुआ नहीं है। यह तो निरा कल्पना–प्रसूत ही है। मेघ को दूत बनाकर यक्ष की पत्नी को संदेश भेजने की बात संस्कृत–साहित्य में बिलकुल नयी है। कुछ आलोचकों का विचार है कि यह ग्रंथ कालिदास के व्यक्तिगत जीवन में घटी हुई किसी वियोग–घटना पर आधारित है। सम्भवतः किसी कारण–वश कवि को अपनी प्रिया से बिछुड़ कर जाना पड़ा हो और वियोग की वह आप–बीती वेदना ही मेघदूत के रूप में अभिव्यक्त हुई हो। श्री हरिनाथ महोदय का कहना है कि ''कालिदास से पूर्व ही चीन के एक कवि हू–कान् 200 ई0 ने मेघ को दूत बनाकर भेजने की कल्पना कर ली थी'' किन्तु कालिदास के जन्मकाल–सम्बन्धी पांचवी शताब्दी वाले बाद के खण्डन हो जाने से यह बात भी स्वयं खण्डित हो जाती है। प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ मेघदूत की टीका में– 'सीतां प्रति रामस्य हनुमत्सं देश्ज्ञं मनसि निधया मेघदत–संदेशं कविः कृतवानित्याहुः' कहकर वाल्मीकि–रामायण में आई हुई राम का हनुमान द्वारा सीता को संदेश पहुंचाने वाली घटना को मेघदूत का बीज बतलाया है और 'आहुः' कहकर यह भी द्योतित करते हैं कि उनके समय में मेघदूत–विषयक यह धारणा बहुप्रचलित थी। इसमें संदेह नहीं कि मेघदूत में 'जनकतयास्नानपुण्योदकेषु रामगिर्याश्रमेषु' 'रघुपतिपदैरडिग्तम' 'दशमुखेच्छ्वासितप्रस्थसन्धेः' इत्याख्याते पवनतनयं मैथिलीवोन्मुखी सा' इत्यादी पंक्तियों पर राम के कथानक की छाप अवश्य पड़ी हुई है; साथ ही मेघदूत तथा रामायण का वर्षाऋतु–वर्णन और कतिपय अन्यान्य बातें भी बहुत कुछ समानता ही हैं। सम्भ्व है कि कालिदास को वाल्मीकि से थोड़ी–बहुत भाव–प्रेरणा मिली हो जैसे कि रघुवंशादि में भी मिली है, किन्तु निर्माण की दृष्टि से मेघदूत की सारी वस्तुएं कालिदास की अपनी ही है, जिससे इस ग्रथ की मौलिकता पर कोई आपत्ति नहीं की जानी चाहिए। निस्सन्देह दूतकाव्यों की परम्परा चलाने का आदि श्रेय कालिदास को ही है। [8]

कालिदास का मेघदूत गीतिकाव्यों का चूड़ामणि है। साहित्यक जगत् में जो ख्याति कवि को रघुंवश और शकुन्तला ने प्रदान की है, मेघदूत ने भी उससे किसी तरह भी कम ख्याति प्रदान नहीं की। विद्वानों की तो यहां तक सम्मति है कि यदि कालिदास रघुवंश, शाकुन्तल को न लिखकर केवल मेघदूत को ही लिखते, तो भी संसार इन्हें प्रकाण्ड महाकवियों में ही गिनता। कल्पना का विविध विलास, भावों की कोमल अभिव्यज्जना तथा माधुर्य का सतत् प्रवाह जो हमें इस रचना में मिलता है, वह अन्यत्र कहां? यक्ष तो केवल माध्यम अथवा निमित्त–मात्र है। वास्तव में विरह–पीड़ित मानव का समूचा–क्या अन्तर्जगत्–क्या तो आशाएं, क्या निराशाएं, क्या हर्ष और क्या विषाद–हमारी आंखों के सामने खड़ा हो जाता है। मेघदूत क प्रत्येक पद्य के शब्द–शब्द और पक्षधर में विरह–व्यथित हृदय की गहरी आह और सूक्ष्म धड़कन सुनाई देती है। यहां तक कि पर्वत, नदियां, ग्राम एवं ग्राम–भूमियां आदि सारी बाहा प्रकृति भी सहानुभूति होकर अन्तर्जगत् के साथ अपनी एकता स्थापित करती हुई स्वयं भी विरह की आग उगल रही है। पूर्वमेघ तो प्रायः प्रकृति के ही चित्रों का एक विशाल संग्रह है। सर्वप्रथम प्रकृति का एक महत्वपूर्ण अंश मेघ ही कभी तो 'चिर–विरह के कारण गर्म–गर्म आंसू गिराते हुए अपने प्रिय–सखा शैल को गले लगाता हुआ', कभी 'किनारे के वृक्षों से गिरे हुए पुराने पत्तों के रूप में विरह से पीली निर्विन्ध्या नदी की कृशता को दूर करता हुआ' कभी 'मछली की कलोल के रूप में गम्भीरता के चञ्चल चितवन को विफल न जाने देता हुआ' है। कहीं प्रिय–समागम के सुख–लोभ से बगुलियां पंक्ति बांध कर आकाश में उड़ रही हैं, 'शिलीन्ध्रों से रोमाञ्चित पृथिवी जुती जाती हुई प्रथम वृष्टि के कारण महक छोड़ रही है, कहीं चौकड़ी

भरती मृगियां मेघ को मार्ग बता रही हैं, कहीं गर्जन–पूर्वक तीर से जल–ग्रहण के रूप में मेघ द्वारा अधरपान किए जाने पर वेत्रवती चञ्चल तरंगों के रूप में भृकुटि ताने हुए है, कहीं 'प्रतनु सलिल' की एक वेणी बांधे हुए कृश –गात सिन्धु अपनी विरहावस्था को व्यक्त कर रही है, कहीं सूर्य प्रवास से आकार अपने करों से विरहपीड़ित नलिनी के 'कमल–वदन' पर गिरे हुए ओस के आंसू पोंछ रहा है और कहीं 'अपने फेन' से गौरी के भ्रूभंग का उपहास करती हुई देखें क्या है? वियोग के भय से लहर–करों द्वारा शिवजी के केशों को पकड़े हुए है। प्रकृति की इस संवेदना से विरही यक्ष के संतप्त हृदय को बड़ी शान्ति मिलती रहती है। इस तरह विरह–भावना से प्रतिबिम्बित बहिर्जगत् को पृष्ठ–भूमि बनाकर कलाकार उत्तर मेघ में अन्तर्जगत् का चित्रण करता है, जिसमें हमें उसी तूलिका–कौशल का दर्शन होता है जैसे बाहा प्रकृति के चित्रण में। बेचारी विरह–पीड़ित यक्ष–पत्नी पाले से मुरझाई हुई कमलिनी की तरह क्या थी और क्या हो गई; न तो बहुत बोलती है और न ही संसार के पदार्थों में रूचि रखती है; आभूषण–रहित हो कर एक मैली–सी साड़ी पहने 'सहचर से वियुक्त चक्रवाकी की तरह अकेली एक मूर्तिमती सी बनी बैठी है। वह कभी गोद में वीणा लेकर प्रिय का गीत छेड़ना चाहती है कि सहसा दृदय में स्मृति की विषम वेदना आंसू बनकर बह जाती है और तत्क्षण ही उसका कण्ठ भी मूक और वीणा भी मूक रह जाती है। रातें आंखों में ही बीतती है और बेचारी पति–समागम के सुख–स्वप्नों से भी वञ्चित ही रहती है। उसका कोमल हृदय कभी का टूट गया होता यदि अवधि समाप्त होने पर पति से पुनर्मिलन की आशा उसे थामे न होती है। वास्तव में मेघदूत की नायिका यक्ष–पत्नी भारत की एक आदर्श नारी है और सर्वथा उसी पंक्ति में बैठने का अधिकार रखती है, जिस पंक्ति में कालिदास की अन्य नायिकायें–पार्वती, इन्दुमती, सीता और शकुन्तला बैठी है। अब दूसरा यक्ष का भी चित्र देखिए; बेचारा प्रकृति के सौंदर्य और विरह में अपने हृदय आभास प्राप्त कर आश्वासित होकर प्रियतमा से पुनर्मिलन की आशा में किसी तरह जीवित ही रह रहा है; कभी किसी शिला–फलक पर गेरू से अपनी प्रणय–कुपित प्रेयसी का चित्र बनकार उसे मनाने के लिए ज्यों ही चिरणों पर गिरना चाहता है कि क्रूर भाग्य आंखों को आंशुओं से भर कर उसे देखने ही नहीं देता; कभी दक्षिण की ओर से बहनेवाली देवदारू–द्रुमों की सुगन्धित पवन का इस विचार से अलिङग्न करता है वह अवश्य उसके प्रेयसी के अडगें का स्पर्श करके आई होगी; कभी चकित मृगियों की दृष्टि में अपनी प्रियतमा की चितवनों की, चांद में उसके मुख सौंदर्य की और नदी–तरंगों में उसके भ्रविलासों की कल्पना किया करता है; स्वप्न में प्रिया–समागम होने पर उसे आलिङग्न करने के लिए आकाश में भुजाओं को उठकता है जिसे देखकर वन–देवियां भी दो–दो आंसू गिरा देती है। यह सब विरह–व्यथित हृदय की ऐसी कठोर वेदना है कि सहृदय पाठकों को शृंगार अपना क्षेत्र छोड़कर करूण–रस की सीमा के आसपास गया हुआ दिखाई देता है। इस तरह यक्ष का प्रेम वियोग के अग्नि–कुण्ड में पड़कर वासनात्मक मल को भस्म करके अपनी सीमित परिधि से निकला हुआ असीमरूप में अभिव्यक्त होने लगता है; अब उसे क्या महल, क्या मार्ग क्या, क्या आगे और क्या पीछे–सभी जगह प्रियतमा दृष्टिगत होने लगती है– यहां तक कि अन्ततोगत्वा सारा विश्व उसे प्रियतमात्मकता के एकत्व–वाद में परिसमाप्त हुआ अनुभूत होने लगता है।

''प्रासाद सा, पथि च सा, पृष्ठतः सा, पुरः सा।
सा सा सा सा जगति सकले कोऽयमद्वैतवादः।।'' [9]

निष्कर्ष

यह भारत का आदर्श प्रेम, जो साधना द्वारा होकर विश्वप्रेम में परिणत हुआ यक्ष को वृक्ष, पर्वत, नदी, नद–अर्थात् सभी जड़–चेतनों के प्रति ममत्व की दिव्य अनुभूति प्रदान करता है और इसतरह उसे एक से अनन्त की ओर ले जाता है, 'मर्त्य' से 'अमर' बना देता है।

संदर्भ

1. मेघदूतम् पृ0 18
2. मेघदूतम्, उत्तरमेघ, पृ0 20
3. मेघदूतम्, पृ0 22
4. मेघदूतम्, पृ0 22
5. मेघदूतम्, पृ0 23
6. मेघदूतम्, पृ0 25
7. मेघदूतम्, पृ0 26
8. वहीं
9. मेघदूतम्, पृ0 30